5 भगवान महावीर द्वारा महानदियों का संतरण

आज के वैचारिक जगत् में एक प्रश्न चक्कर काट रहा है कि जैन-भिक्षु अर्थात् साधु-साध्वी को गहरे और विशाल जलराशि वाले जलाधारों अर्थात् नदियों को नौका से पार करना चाहिए या नहीं? और, कुछ कम जलवाली जंघा-संतारिम नदियों को भी पैरों से चलकर पार करना चाहिए या नहीं? इसी प्रश्न चक्र-व्यूह में से कुछ और प्रश्न भी समाधान के लिए उठ खड़े हुए हैं—कार - वायुयान आदि वाहन और यानों का भी यथाप्रसंग प्रयोग होना चाहिए या नहीं? यदि नदी संतरण का प्रश्न ठीक तरह समाधान पर पहुँच जाता है, तो अन्य प्रश्न स्वतः समाधान पा लेते हैं। क्योंकि नौका-यान आदि द्वारा नदियों को पार करना सर्वाधिक हिंसा का प्रसंग है। जलकाय के असंख्य जीवों और तद्गत निगोद के अनन्तानन्त जीवों की हिंसा तो है ही, साथ ही त्रस काय के द्वींद्रीय से लेकर पञ्चेंद्रिय जीवों की हिंसा तक का भी अवश्यंभावी सम्बन्ध है, नदियों की जल-यात्रा से।

श्रमण भगवान् महावीर से पहले के कोई आगम उपलब्ध नहीं हैं। जो कुछ भी वाङ्मय उपलब्ध है, वह भगवान् महावीर और तदुत्तरकालीन आचार्यों से सम्बन्धित है। प्रश्न है, भगवान् महावीर ने दीक्षित होने के बाद के जीवन-काल में नौका का प्रयोग किया या नहीं? कुछ सज्जन कहते हैं—मूल आगम में उल्लेख नहीं है। अतः उत्तरकालीन आचार्यों द्वारा इस प्रकार के वर्णित प्रसंग हमें मान्य नहीं हैं। यदि आगमों को ही मान्य रखा जाए एकान्त रूप से, तो सैकड़ों क्रिया-काण्ड ऐसे हैं, जो आगम में कहीं नहीं हैं, किन्तु हम उन्हें मान्यता देते हैं। मुखवस्त्रिका किसलिए है और उसका क्या परिणाम है? यह किस आगम से प्रमाणित किया जाता है। जैन परम्परा का एक दिगम्बर वर्ग मुखवस्त्रिका रखता ही नहीं है। जो श्वेताम्बर वर्ग मुखवस्त्रिका रखता है, उसमें भी कुछ हाथ में रखते हैं और कुछ हमेशा मुख पर बाँधे रखते हैं। किसी की मुखवस्त्रिका लम्बी होती है, तो किसी की चौड़ी। संप्रदाय और प्रांतीय भेद से उसके भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार हैं। ये किसी आगम के आधार से प्रमाणित नहीं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक वार अचित्त हुआ पानी पुनः किस ऋतु में कितने काल बाद सचित्त होता है? यह किस आगम के आधार से माना जाता है। अनेक सचित्त वस्तुएँ अमुक प्रकार के प्रक्षेपण से कितने काल बाद अचित्त होती है? यह किस आगम के आधार से है?

शास्त्र, ग्रन्थ आदि लिखना एवं रखना तथा पात्रों की परिगणना किस मूल आगम से मानी जाती है? वर्तमान के बीस विहरमानों के नाम और उनसे प्रतिक्रमण आदि की आज्ञा लेना, किस आगम के आधार पर है? जबकि वे स्वयं पंच-प्रतिक्रमण (दिन-रात आदि) के पक्षधर नहीं हैं? साथ ही विभिन्न संप्रदायों के प्रतिक्रमण आदि की विभिन्न विधियाँ किस आगम के आधार पर हैं? कहाँ तक गिनाया जाए, सैकड़ो ही बातें आगम में न होने पर भी मानी जाती हैं, जो उत्तरकालीन आचार्यों द्वारा स्थापित की गई हैं। अतः भगवान् महावीर के नदी संतरण का प्रश्न भी एकान्त रूप से आगम के 'हां और ना' के साथ जोड़ना गलत है।

यह सर्वथा सिद्ध है कि आगम भी विखण्डित हैं। वे अपने रूप में आज पूरे-के-पूरे अखण्ड नहीं रहे हैं। एक आगम में दूसरे आगम का स्वरूप जो वर्णित है, वह उस आगम में उपलब्ध नहीं है। प्रश्न व्याकरण सूत्र ही इसका प्रमाण है। अन्तकृतदशांग आदि सूत्रों के अनेक अध्याय, जो स्थानांग सूत्र में उल्लिखित हैं, वे आज इन आगमों में उपलब्ध नहीं हैं। साधारण शास्त्रज्ञ भी यह सब देख सकता है। आचारांग सूत्र का सातवाँ अध्याय पूर्णतया गायब है। उसका एक अक्षर भी उपलब्ध नहीं है आज। अतः भगवान् महावीर के नदी संतरण एवं अन्य प्रश्नों के समाधान के लिए वर्तमान खण्डित आगमों पर ही सब बातें छोड़ देना बौद्धिकता से परे की बात है। इस प्रकार तर्कहीन एकान्त अन्ध आग्रह से हम उत्तरकालीन अनेक महामान्य आचार्यों को झुठलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह कितना दुराग्रह भरा दम्भ-जाल है।

अस्तु, हम यहाँ भगवान् महावीर के जीवन के लिए एकान्त रूप से आगमों को ही सर्वाधार नहीं मान सकते हैं। मूल आगमों में तो महावीर का जीवन-वृत्त एक बूंद जितना भी नहीं है। अधिकतर वर्णन, जिन्हें हम मानते हैं और प्रचारित करते हैं, वह सब उत्तरकालीन आचार्यों के मान्य ग्रन्थों में ही है। और, वे आचार्य ऐसे हैं, जो भगवान् के पश्चात् होते हुए भी काफी अधिक निकट हैं। भगवान् महावीर से 170 वर्ष बाद के आचार्य पंचम श्रुतकेवली, चतुर्दश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वविद् भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यक निर्युक्ति में भगवान् महावीर के जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों परम्परओं में महामान्य आचार्य की महामान्य कृति आवश्यक निर्युक्ति के आधार पर हम यहाँ भगवान् महावीर की नौका-यात्रा के कुछ प्रसंग उपस्थित कर रहे हैं, जो पीछे के सभी आचार्यों को मान्य रहे हैं।

"सुरभिपुरं सिद्धदत्तो गंगा कोसिय विऊ य खेमलतो।
नागसुदाढे सीहे कंबलसबलाणं जिणमहिमा ।।469।।

वीरवरस्स भगवतो नावारूढस्स कासि उवसग्गं।
मिच्छादिट्ठिपरद्धं कंबलसबला समुत्तारे ।।471।।-1

—आवश्यक निर्युक्ति

सुरभिपुरं भगवान् गतः तत्र गंगा नाम नदी, सिद्धयात्रो नाम नाविकः, तत्र नावमारोहति जने, कौशिको महाशकुनापरपर्यायो वासितवान्, खेमलकश्च शकुनविद्वान् अवादीत् —यदि परमेतस्य भगवतो प्रभावेन जीवांम् इति, अत्रान्तरे नागो नागकुमारः, सुदंष्ट्रनामा सिंहजीवो, भगवत उपसर्ग कर्त्तुमारब्धवानिति शेषः, कंबलशबलौ च नागकुमारौ तं वारयित्वा जिनस्य भगवतो महिमां चक्रतुः।"

—आचार्य मलयगिरि टीका

उपर्युक्त गाथा में स्पष्ट है कि भगवान् महावीर ने साधनाकाल में सुरभिपुर के पास गंगा नदी नौका से पार की थी। उस समय एक नागकुमार असुर ने भगवान् पर उपसर्ग किया और नाव डुबाने लगा, तो भगवान् के भक्त कंबल और शबल नाम देवों ने उपसर्ग का निवारण किया। इस प्रकार जिनेश्वर देव की महिमा की।

"वेसलिए पडिमं संखो गणराय पिउवयंसो य।
गण्डइआसरि तिन्नोचित्तो नावाए भगिणिसुओ।।494।।

—आवश्यक निर्युक्ति

वैशाल्यां नगर्यां शंखो नाम गणराजः पितृवयस्यः- सिद्धार्थराजमित्रं भगवतः पूजामकरोत् तथा भगवन्तं वणिग्गरामं प्रति प्रचलितमन्तरा गण्डकिकां सरितं - नदी तीर्णं नाविकैधृतं चित्रः शंखराजस्य भगिनीसुतो नावा समागच्छन् मोचितवान् पूजितवांश्च। —मलयगिरि टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त गाथा एवं टीका का भावार्थ है कि भगवान् महावीर वैशाली से वाणिज्य ग्राम जा रहे थे। बीच में गण्डकी नदी को पार करने के लिए नौका पर बैठे। नाविकों ने नौका पार करने का मूल्य न मिलने पर भगवान् को पकड़ लिया। किन्तु, चित्र नाम राजकुमार ने भगवान् को छुड़ाया।

उपर्युक्त प्राचीन कथन पर से स्पष्ट है कि भगवान् महावीर ने गंगा और गण्डकी जैसी महानदियाँ नौकाओं से पार की है। बिहार प्रान्त में आज भी गण्डकी और गंगा जल प्रवाह के विस्तार की दृष्टि से महान् ऐतिहासिक नदियाँ हैं। स्वयं लेखक ने भी बिहार प्रदेश की अपनी विहार-यात्रा में दोनों नदियों को पार किया है और देखा है—इनका विशाल जल-प्रवाह। अस्तु, आवश्यक निर्युक्ति जैसे प्राचीनतम महान् ग्रन्थ में निर्दिष्ट वर्णन से कौन विचारशील व्यक्ति इन्कार कर सकता है कि श्रमण भगवान् महावीर ने गंगा और गंडकी जैसी नदियाँ पार नहीं की? और, भी अनेक नदियों को अनेक वार पार किया होगा, किन्तु उक्त दो प्रसंग तो उपसर्गों की घटनाओं से सम्बन्धित थे, इसलिए उल्लेख में आ गए। अन्य नदी संतरण साधारण होने से अर्थात् उपसर्ग रहित होने से उल्लिखित नहीं किए गए।

भगवान् महावीर के प्राकृत भाषा में पद्य-बद्ध चरित्र के लेखक महान् आचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने वि. सं. 1141 में 'महावीर चरियं' लिखा है। आचार्यश्री ने अपने ग्रन्थ में लिखा है—

"संपत्थिओ य भयवं सुरहिपुरं तत्थ अन्तरे गङ्गा।
तो सिद्धदत्त नावं आरूढो लोगमज्झम्मिं ।।96।।

उक्त संदर्भ का विस्तृत वर्णन करते हुए आचार्य श्री ने सुरभिपुर के पास गंगा नदी को नौका द्वारा पार करने का उल्लेख किया है और वहाँ लिखा है —"संचलिया नावा पत्ता अगाहजले।" और आवश्यक निर्युक्ति के अनुरूप उपसर्ग और उपसर्ग निवारण की विस्तृत चर्चा की है।

आचार्य गुणचन्द्रसूरि ने प्राकृत गद्य में प्रमुख रूप से भगवान् महावीर का विस्तृत जीवन लिखा है। उक्त 'महावीर चरियं' में भी गंगा महानदी को नौका द्वारा भगवान् महावीर ने पार किया, यह स्पष्ट उल्लेख है—

"सुरभिपुरं अइक्कमिऊण संपत्तो जलहिपवाहाणुकारिवारिपसरं सयलसरिंयापवरं गंगामहानइं।" महावीर चरियं गुणचन्द्रसूरि, प्रस्ताव, 5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रसंग पर आचार्यश्री गंगा को 'जलहि' अर्थात् जलधि (सागर) की उपमा दी है। और उसे समग्र नदियों में विशाल महानदी बताया है। आगे की अनेक गाथाओं में तो विस्तृत रूप से गंगा की विशालता एवं भीषणता का वर्णन करते हुए अंततः उसे मच्छ-कच्छ मगर आदि से युक्त तथा भीषण आवृत्तवाली भी कहा है।

"रंगतमच्छकच्छवमयरोरग भीषणावत्तं। पृष्ठ 178

नाविएण पगुणीकया नावा .... भयवंपि अरुहिऊणं ठिओ तीसे एगदेसे.. .पयट्टा महावेगेण गंतुं नावा...। —वही, प्रस्ताव 5

यह वर्णन अतीव विस्तृत रूप से लिखा गया है। किन्तु लेख का कलेवर बढ़ जाने से यहाँ केवल संकेत रूप में ही कुछ उल्लेख किए हैं।

आचार्यश्री गुणचन्द्रसूरि ने जिस प्रकार गंगा नदी को नौका द्वारा पार करने का विस्तार से वर्णन किया है, उसी प्रकार विस्तार के साथ नौकारूढ होकर भगवान् महावीर द्वारा गण्डकी नदी पार करने का भी वर्णन किया है। गण्डकी नदी का वर्णन करते हुए उसे बहुत अधिक तरंगाकुल, महान् जलपूर से पूरित, अतीव दुर्वगाह तथा दुर्ग्राह्य एवं रणभूमि के समान दुस्तर बताया गया है। भगवान् महावीर जब गण्डकी नदी पार कर नौका से उतर कर चलने लगे, तब नाविकों ने मूल्य के लिए उन्हें पकड़ लिया और मध्याह्न सयम तक उन्हें रोके रखा। और सिद्धार्थ राजा के बाल-मित्र शंख नामक गणराजा के भगिनि पुत्र चित्र राजकुमार ने भगवान् को नाविकों से मुक्त कराया। वर्णन विस्तृत है। हम यहाँ केवल नौकारोहण का ही पाठ दे रहे हैं—

"तं च सामी नावाए समुत्तिन्नो समाणो वेलुयापुलिणंसि मुल्लनिमित्तं धरिओ नाविगेहि।" श्री गुणचन्द्रसूरि, महावीर चरियं, प्रस्ताव 7 पृ. 224

गंगा और गण्डकी नदियों को नौका द्वारा पार करने का उक्त वर्णन ही आचार्य जिनदास महत्तर, आचार्य हेमचन्द्र तथा आचार्य शीलांक आदि ने भी अपने महावीर चरित्रों में अंकित किया है। बुद्धिमानों के लिए उपर्युक्त उल्लेख ही नौकारोहण की घटना को समझने के लिए पर्याप्त है, अधिक विस्तार की कोई अपेक्षा नहीं है।

प्रश्न है, क्या ये सब वर्णन कपोल-कल्पित हैं आचार्यों ने अपनी कल्पना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से ही यह सब जोड़-तोड़ लगाया है। आचार्य भद्रबाहु जैसे श्रुत-केवली भला कैसे मिथ्या कल्पना कर सकते हैं। उन्होंने आवश्यक निर्युक्ति में भगवान् महावीर द्वारा नौकारोहण का वर्णन किया है। वही मध्य-काल की यात्रा करता हुआ आज तक हम लोगों के द्वारा वर्णन किया जा रहा है। आचार्य भद्रबाहु को अवश्य ही तत्कालीन खण्ड आगमों में से या श्रुत-परम्परा से वर्णन उपलब्ध हुआ होगा। आचार्य भद्रबाहु जैसे को कल्पित कथाकार कहना विचार-मूढता के सिवा अन्य कुछ नहीं है।

अरहन्त होने के पश्चात्

एक प्रश्न और खड़ा किया जाता है कि ये तो उनके छद्मस्थ काल की घटनाएँ हैं। अरहन्त होने के पश्चात् नदी पार करने का कोई वर्णन नहीं मिलता। जरा भी बुद्धि से विचार किया जाय, तो छद्मस्थकाल तो फिर भी साध्वाचार की नियमावली से प्रतिबद्ध है। उसमें आचार सम्बन्धी विधि-निषेध की कुछ व्यवस्था नहीं रहती है। यदि रहती है, तो फिर स्वर्ण सिंहासन, छत्र चंवर, दुन्दुभि, पुष्प-वृष्टि आदि का वर्णन—जो समवायांग राज प्रश्नीय आदि मूल आगमों तक में मिलते हैं, उनका समाधान कैसे होगा? साधु-आचार से विपरीत यह आचरण कैसे संगत हो सकता है? अतः स्पष्ट है कि अरहन्त होने के पश्चात् भी गंगा जैसी महानदियाँ पार की है। किन्तु, आचार्यों ने उनके उल्लेख को कोई महत्त्व नहीं दिया। पूर्व लेखानुसार उनका किसी उपसर्ग विशेष वर्ग से यदि सम्बन्ध होता, तो उनका उल्लेख किया जाता। स्पष्ट है, ऐसा कोई उपसर्ग विशेष नदी सम्बन्धी अर्हत् काल में नहीं हुआ।

आगम के साथ तर्क का भी अपना एक महत्त्व है। जो बात मूल में स्पष्ट न हो, वह युक्ति-युक्त तर्क से स्पष्ट हो जाती है। कल्पसूत्र, आवश्यक निर्युक्ति आदि में भगवान् महावीर के छद्मस्थ और अरहन्त काल के 42 वर्षावासों का वर्णन है। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर और अन्य ऐतिहासिक विद्वान् पुरातत्त्ववेत्ता पंडित मुनिश्री कल्याण विजयजी एवं आचार्य विजय यशोदेवसूरि आदि ने भगवान् महावीर के अरहन्तकालीन चातुर्मासों का वर्णन किया है, उसकी एक तालिका प्रस्तुत है। उस पर से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् महावीर ने अरहन्त काल में भी गंगा महानदी पार की है। गंगा के उत्तर में वैशाली, वाणिज्य ग्राम और मिथिला है और गंगा से दक्षिण बिहार में राजगृह, नालंदा है, तालिका पर से आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखेंगे कि वैशाली, मिथिला से राजगृह और राजगृह से वैशाली, वाणिज्य ग्राम और मिथिला में भगवान् महावीर के वर्षावास हुए हैं। और ये वर्षावास गंगानदी पार किए बिना कथमपि संभव नहीं हैं।

वर्षावास	स्थल का नाम	वर्षावास	स्थल का नाम
तेरहवाँ	राजगृह	उन्तीसवाँ	वैशाली
चौदहवाँ	वैशाली	तीसवाँ	वाणिज्य ग्राम
पंद्रहवाँ	वाणिज्य ग्राम	इकतीसवाँ	वैशाली
सोलहवाँ	राजगृह	बत्तीसवाँ	वैशाली
सत्रहवाँ	वाणिज्यग्राम	तेत्तीसवाँ	राजँगृह
अठारहवाँ	राजगृह	चौतीसवाँ	नालन्दा
उन्नीसवाँ	राजगृह	पैतीसवाँ	राजगृह
बीसवाँ	वैशाली	छत्तीसवाँ	मिथिला
इक्कीसवाँ	वाणिज्यग्राम	सैंतीसवाँ	राजगृह
बाईसवाँ	राजगृह	अड़तीसवाँ	नालन्दा
तेईसवाँ	वाणिज्यग्राम	उन्चालीसवाँ	मिथिला
चौबीसवाँ	राजगृह	चालीसवाँ	मिथिला
पच्चीस से सत्ताइस	मिथिला	इकतालीसवाँ	राजगृह
अट्ठाईसवाँ	वाणिज्यग्राम	बयालीसवाँ	पावा मध्यमा (पावापुरी)

उपर्युक्त तालिका पर से स्पष्ट है कि भगवान् महावीर ने चातुर्मासों के इन क्रम में कितनी बार गंगा नदी को पार किया है। बिहार की भौगोलिक स्थिति की थोड़ी-बहुत भी जानकारी रखने वाला पता लगा सकता है कि दक्षिण बिहार और उत्तरी बिहार का विभाजन करने वाली गंगा नदी है। इसको पार किए बिना ये वर्षावासों का क्रम संगति प्राप्त नहीं कर सकता। और, गंगा का उत्तरण नौका द्वारा ही हुआ है, कोई लब्धि प्रयोग से, आकाश से उड़कर नहीं। साधारण साधु के लिए लब्धि-प्रयोग वर्जित है, तो अरहन्त के लिए तो यह प्रयोग हो ही कैसे सकता है? अकेले तो नहीं आए हैं। साथ में हजारों साधु-साध्वियों का संघ भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा है। इतने बड़े संघ का आकाश से उड़कर आने की बात करना तो बौद्धिक दिवालियापन के सिवा और कुछ भी नहीं है।

भगवती मल्ली उन्नीसवें तीर्थंकर हैं। वे गंगा नदी से उत्तर बिहार मिथिला की हैं। दीक्षा लेते ही उसी दिन उन्हें अर्हत्-भाव प्राप्त हो चुका था। क्या उन्होंने सारा अर्हत्-जीवन मिथिला में ही गुजारा? क्योंकि मिथिला के आस-पास भी कितनी ही ऐतिहासिक नदियाँ हैं। क्या उन्हें पार नहीं किया गया? और, सबसे बड़ी बात है उनके निर्वाण की। उनका निर्वाण गंगा के इस पार दक्षिण बिहार के सम्मेत् शिखर पर्वत पर हुआ है। बताइए, गंगा को पार किए बिना वे कैसे सम्मेत्शिखर पहुँचे।

प्रस्ताविक विषय काफी स्पष्ट हो चुका है, उसके लिए अब कुछ और अधिक लिखना अनावश्यक है। अपेक्षा है, दुराग्रह को छोड़कर सदाग्रह के साथ सत्य को स्वीकार करना।

प्रस्तुत प्रकरण का उपसंहार करते हुए एक बात पर और विचार कर लेते हैं। स्थानांगसूत्र और अन्य वाङ्मय में नौका द्वारा नदी संतरण के दुष्काल, रोग, राजभय एवं म्लेच्छ आक्रमण आदि कुछ कारण बताए गए हैं, जो भिक्षु की जीवन-रक्षा से संबन्धित हैं। किन्तु, भगवान् महावीर द्वारा गंगा जैसी महानदी पार करने में ऐसा कोई हेतु नहीं है—न छद्मस्थ काल में और न अरहन्त काल में। अकारण यों ही इधर-उधर घूमने के उद्देश्य से तो उन्होंने नदी पार नहीं की। हेतु तो होना ही चाहिए और, वह हेतु छद्मस्थ काल में असंग साधना रूप विहार-यात्रा और अरहन्त काल में धर्म-प्रचार ही एक मात्र हेतु प्रतिभासित होते हैं। जरा तटस्थता से विचार करेंगे, तो मेरा यह निष्कर्ष अवश्य ही अनाग्रही पाठक के मन-मस्तिष्क में अवतरित होगा।

निर्ग्रंथ भिक्षु-भिक्षुणी द्वारा नदी-संतरण

अंग-साहित्य का प्रथम सूत्र आचारांग है। सर्व प्रथम नदी संतरण का उक्त आगम के अद्वितीय श्रुतस्कंध के तृतीय इर्यैषणा अध्ययन में उल्लेख है। वहाँ किसी विशेष कारण का उल्लेख किए बिना विहार-यात्रा में नदी आ जाए, तो उसे नौका द्वारा पार करने का वर्णन है। सागारी भक्त प्रत्याख्यानकरके भिक्षु नौका में यथास्थान बैठ जाता है। नदी की जल-धारा में यदि उसे अधिक भार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझ कर कोई नाविक नदी में फेंक दे, तो वह पवमयाणे अर्थात् तैरकर नदी पार करे। यदि भण्डोपकरण का भार अधिक हो और उसके फलस्वरूप उसे तैरने में बाधा पड़ती हो, तो उन्हें जल-प्रवाह में उतार कर डाल दे और हल्का हो जाए। इस तरह लघुभूत होने से जलधारा में तैरना सहज हो जाता है।

यह वर्णन स्पष्ट करता है कि भिक्षु नौका द्वारा नदी पार कर सकता है? नौका द्वारा ही नहीं, प्रसंग आ जाए तो तैर कर भी पार कर सकता है। प्रश्न है, संथारा में जान-बुझकर हिंसाकारी नौका में बैठकर कैसे यात्रा की जाती है? साथ ही धारा के विशाल प्रवाह को तट तक कैसे तैरा जा सकता है? संथारा में इस प्रकार की सावद्य क्रिया करना, क्या ठीक है? मूल आगम में विधान तो है। समाधान है-साधक के लिए जीवन-रक्षा का प्रयत्न किया गया है। यदि जीवन-रक्षा के लिए यह सब-कुछ किया जा सकता है, तो क्या धर्म प्रचारार्थ एवं जिन-शासन की गरिमा हेतु नौका और उससे भी अल्प-हिंसक यांत्रिक-वाहनों का प्रयोग करने में क्या बाधा आती है?

प्रस्तुत प्रसंग को देखते हुए यह संथारा केवल भक्त प्रत्याख्यान रूप है अर्थात् भोजन का परित्याग। वह भी इसलिए कि प्रायः तूफान, आवर्त्त तथा अतिभार आदि के कारण नौकाएँ अगाध जल में डूब जाती हैं और इस दुर्घटना में प्राणान्त भी हो सकता है। अतः भक्त-प्रत्याख्यान के रूप संथारा, ग्रहण कर लिया जाता है। नौकारोहण के निषेध के अतिवादी क्रियाकाण्ड उक्त संथारे की प्रायः चर्चा किया करते हैं, उन्हें शान्त चित्त से इस पर विचार करना चाहिए।

उक्त प्रसंग पर हमें आचार्य भद्रबाहु का आवश्यक निर्युक्ति में किया गया कथन स्मृति-पथ में आ जाता है-"सर्वत्र संयम की रक्षा करनी चाहिए। यदि संयम और जीवन-रक्षा के मध्य कोई द्वंद्व उपस्थित हो जाए, तो संयम की अपेक्षा जीवन की ही रक्षा करनी चाहिए"-

"संजमहेउं देहो धारिज्जइ, सो कओ उ तदभावे
संजम - फाइनिमित्तं, देहपरिपालणा इट्ठा ।।47।।"

उक्त प्रसंग पर एक प्रश्न विचाराधीन है। वह यह कि जब अंग-साहित्य के प्रथम अंग सूत्र आचारांग में नौका द्वारा नदी-संतरण का विस्तृत रूप से उल्लेख है, तो यहाँ महानदी और जंघा संतारिम-अल्प नदी का वर्णन क्यों नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया, जो प्रसंगतः+ आवश्यक था। साथ ही दूसरी बात यह है कि एक मास में तथा एक वर्ष कितनी बार नदियाँ पार करनी, यह भी नहीं बताया गया, जो कि उत्तरकालीन आगमों में वर्णित है। क्या आचारांग के काल में तथाकथित नौका-यात्रा द्वारा नदी पार करने की परिगणना की कोई स्थिति नहीं थी? विद्वत्जन इस पर ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ विचार करें तो अच्छा है।

बृहत्कल्प सूत्र के चतुर्थ उद्देशक में गंगा, जमुना, सरयू, कोशिका और मही-इन पाँच महार्णव, महानदियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है-

"नो कप्पइ निग्गंथाण निग्गंथीण वा पंचमहण्णवाओ महानदीओ उद्दिट्ठाओ गणिआओ वज्जियाओ।

अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो व उत्तरित्तए वा, संतरित्तए वा तंजहा-गंगाजमुनासरयूकोसियामही" —32 टीका।

भावार्थ है, ये पाँच महानदियाँ एक महीने के अंदर नौका द्वारा अथवा तैर कर दो बार या तीन बार पार नहीं करनी चाहिए। इसका अर्थ है, महीने में एक बार तो पार की ही जा सकती है। "दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो" में वा शब्द है, जिससे यह भी फलित हो सकता है कि दो वार भी पार की जा सकती हैं।

प्रश्न है, महानदियाँ तो शतद्रु, विपासा, नर्मदा, काबेरी, आदि अन्य भी महार्णव नदियाँ हैं। उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया। क्या सूत्रकार को इतनी ही भौगोलिक जानकारी थी? यद्यपि भाष्यकर ने इनसे अन्य नदियों की भी कल्पना की है, फलितार्थ के रूप में। किन्तु, मूल पाठ में ऐसा क्यों नहीं है? यह प्रश्न विचाराधीन है।

उक्त उद्देशक में ही उणाला नगरी के समीप बहनेवाली एरावती नदी का वर्णन किया है, जो कहीं जंघा-संतारिम है और कहीं नौका-संतारिम है। यह नदी अर्ध योजन अर्थात् दो कोस चौड़ी है और प्रायः जंघा प्रमाण जल वाली है। इसे पैरों द्वारा पार करने का उल्लेख है। भंडोपकरण नदी के तट पर रख कर जल-मार्ग की जाँच करने के लिए नालिका (एक विशेष दंड, जो अपने परिमाण से चार अंगुल ऊँचा होता है) लेकर परले तट तक जाएँ और फिर लौटकर भंडोपकरण ग्रहण कर तीसरी बार पूर्व परीक्षित जल-मार्ग से नदी पार करे। इस प्रकार छह कोस की जल-यात्रा हो गई है। यह बृहत्कल्प भाष्य का वर्णन है। यदि जंघा-संतारिम जल-मार्ग न हो, तो नौका द्वारा भी पार करने का उल्लेख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"णावोवयग तं पि जतणाए।   "बृहत्कल्प भाष्य, 5655

"कारणे यत्र नवाऽप्युदकं तीर्यते तत्रापि यतनया संतरणीयम्।....

परिहारपरिमाणानामभावे नावा लेपोपरिणा लेपेन संघट्टेन वा गम्यते न कश्चिद्दोष:।

—बृहत्कल्प भाष्य टीका, 5656

उक्त पुरातन कथन पर से स्पष्ट है कि परिस्थिति विशेष में नावादि के द्वारा जल-यात्रा करने में भी कोई दोष नहीं है।

प्रस्तुत में नदी पार करने के अशिव, भिक्षा का अभाव आदि अनेक कारण बतलाए हैं। प्रश्न है, यदि इन्ही कारणों से नदी पार की बात है, तब फिर परिगणना कैसी? दो-तीन वार के बाद भी ऐसे ही कारण उपस्थित हो सकते हैं। तब भिक्षु क्या करे? क्या उक्त निषेध को एकान्त मानकर वहीं प्रणान्त की स्थिति प्राप्त कर ले? यदि जीवन-रक्षा के लिए नदी पार करना है, तो अन्य विकट प्रश्न उपस्थित होने पर परिगणना से अधिक भी अपवाद स्वरूप नदी पार की जा सकती है। अस्तु, उक्त परिगणना के पाठ को सामान्य रूप से ही ग्रहण करना अपेक्षित है, एकान्तवाद के रूप में नहीं।

समुद्र-यात्रा

यद्यपि समुद्र-गामिनी नौका द्वारा समुद्र-यात्रा का निषेध किया गया है, पर यह भी एकान्त नहीं है। लंका के इतिहास से पता चलता है कि लंका के राजा खल्लतांग (ईसा से 109 वर्ष पूर्व से लेकर 103 वर्ष पूर्व तक) काल में अभयगिरि आदि पर जैन मुनियों के संघ पहुँच चुके थे। और, राजा वट्टगामि तक यह संघ लंका में रहा। पश्चात् परिस्थिति विशेष के कारण लंका से श्याम (थाइलैंड) के लिए प्रस्थान कर गए। यह यात्रा समुद्र गामिनी नौकाओं के द्वारा हुई है। प्रस्तुत प्रसंग के लिए 'टाइम्स ऑफ इंडिया' एवं श्री अमर भारती, अगस्त 84, पृष्ठ 32 में सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पी. बी. राय चौधरी का प्रकाशित लेख दृष्टव्य है।

अस्तु। समुद्र-यात्रा भी एकान्त: प्राचीन-काल में निषिद्ध नहीं थी। जैन-दर्शन एकान्तवादी है भी नहीं। उसका समग्र आचार और दर्शन अनेकान्त की धुरी पर अवस्थित है। एकान्तवादी को सम्यक्-दृष्टि नहीं, मिथ्या-दृष्टि माना गया है।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

प्रायश्चित्त चर्चा

नदी-संतरण के लिए प्रायश्चित्त की भी एक चर्चा है सम्प्रदाय भेद से इसके लिए अनेक प्रकार के छोटे-बड़े प्रायश्चित लिए जाते है। किन्तु, वस्तुत: नदी-संतरण का कोई प्रायश्त्ति होता है क्या? यदि होता है, तो वह कौन-सा?

महान्-शास्त्र-मर्मज्ञ आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज आदि अनेक मनीषी मुनि अपवाद का कोई प्रायश्चित्त नहीं मानते थे। जैनागम रत्नाकर आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज को भी नौका द्वारा नदी पार करने का प्रायश्चित्त स्वीकृत नहीं था। उनके द्वारा व्याख्यायित आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कंध तृतीय अध्ययन उद्देशक एक के टिप्पण में लिखा है-"नदी में पानी की अधिकता हो तो मुनि नौका द्वारा उसे पार कर सकता है। यह अपवाद मार्ग उत्सर्ग की भाँति संयम में सहायक एवं निर्दोष माना गया है। क्योंकि आगम में इसके लिए प्रायश्चित्त का कहीं भी विधान नहीं किया गया है।" आचार्य चरणों की उक्त बात असंगत नहीं है। प्राचीन काल से ही उत्सर्ग और अपवाद दोनों को मार्ग ही माना गया है। यह नहीं कि उत्सर्ग मार्ग है और अपवाद अपमार्ग या कुमार्ग है। दोनों ही अपने-अपने स्थान पर श्रेयस्कर एवं शक्तिशाली है। निर्बल कोई भी नहीं है। प्रस्तुत प्रतिपाद्य के लिए देखिए सुप्रसिद्ध बृहत्-कल्प का भाष्य तथा महान् व्याख्याकार श्रुतधर आचार्य मलयगिरि की व्याख्या।[2]

अविधि को आशंका के परिहार के लिए नौका आदि द्वारा नदी पार करने पर 'इरिया पथिक' कायोत्सर्ग का ही विधान है। दृष्टव्य है, निशीथसूत्र के त्रयोदश उद्देशक का भाष्य-

"णावाए-उत्तिण्णो, इरियापहिताए कुणति उस्सग्गं"।।4256।।

पूर्व लेख में भगवान् महावीर द्वारा गंगा नदी पार करने का उल्लेख है। आवश्यक निर्युक्ति गाथा 471 की व्याख्या में आचार्य मलयगिरि ने चूर्णि निर्दिष्ट पाठ उद्धृत किया है, जिसका भावार्थ है1"गंगा नदी पार करने के बाद तट पर 'इरियापथिक' प्रतिक्रमण किया और आगे प्रस्थान कर गए।"-

'ततो भयवं दगतीराए इरियावहियं पडिक्कमिउं पत्थिओ।'

आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने 'महावीर चरियं' में भी ऐसा ही उल्लेख किया है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'दगतीरे पडिक्कमिउं इरियावहिया य पत्थिओ भयवं।'—महावीर चरियं

आचार्य गुणचन्द्रसूरि ने अपने प्राकृत गद्यबद्ध महावीर चरियं में भी उक्त कथन को ही समादृत किया है—

"इओ य भयवं महावीरो नावुत्तिन्नो संतो जलतीरंमि इरियावहियं पडिक्कमिय सुरसरिया परिसरे। —आचार्य गुणचन्द्र, महावीर चरियं, पृष्ठ 181

क्रिया-काण्ड की दृष्टि से दिगम्बर-परम्परा उग्र क्रिया-काण्डी मानी जाती है। उक्त परम्परा के महान् आचार्य हैं, वीरनन्दी सैद्धान्तिक चक्रवर्ती। उनके द्वारा प्रणीत आचारसार एक मान्य आचार ग्रन्थ है। उसमें भी आचार्यश्री ने मलोत्सर्ग एवं नदी आदि उतरने के समय कायोत्सर्ग का ही विधान किँया है—

"व्युत्सर्गोन्तर्मुहूर्त्तादिकालं कायविसर्जनम्।
सद्ध्यानं तन्मलोत्सर्गनद्याद्युत्तरणादिषु ॥"

—आचारसार, षष्ठोऽधिकार, 45

उक्त श्लोक में स्पष्ट है कि नदी-संतरण और मलोत्सर्ग रूप प्रतिष्ठापन समिति दोनों को एक समान माना गया है। इस लिए दोनों के लिए ही कायोत्सर्ग मात्र का विधान है।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं के बीच की एक मध्यस्थ परंपरा रही है—यापनीय-परंपरा। जैन संस्कृत व्याकरण शाकटायन के निर्माता श्री शाकटायन, भगवती आराधना के कर्ता आचार्य शिवार्य तथा अपराजितसूरि जैसे सुप्रसिद्ध अनेक विद्वान्-आचार्य इसी परम्परा के हैं। भगवती आराधना की अपनी सुप्रख्यात तत्त्वगर्भ टीका 'वजयोदया'में कायोत्सर्ग का ही विधान किया है—

"समाहितचित्तो द्रोण्यादिकमारोहेत्, परकूले च कायोत्सर्गेण तिष्ठेत्।
तदतिचारव्यपोहार्थ। एवमेव महतः कान्तारस्य प्रवेशनिःक्रमणयो

—भगवती आराधना टीका, गाथा 152

उक्त आचार्य का ही एक और प्रमाण है कायोत्सर्ग के सम्बन्ध में। वह कायोत्सर्ग के परिमाण स्वरूप किए जाने वाले श्वासोच्छ्वास की गणना से सम्बन्धित है। प्राणी-वधआदि पाँचों ही अतिचारों के लिए कायोत्सर्ग का काल मात्र 108 श्वासोच्छ्वास माना गया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"प्रत्युषसि प्राणिवधादिषु पंचस्वतिचारेषु अष्टशतोच्छ्वासमात्रः काल: कायोत्सर्ग: कार्य:।"–भगवती आराधना, टीका, गाथा 118

प्रस्तुत प्रकरण के समर्थन में प्रमाणों का एक विस्तृत संग्रह है। किन्तु, हम यहाँ मान्य आचार्यों के पर्याप्त प्रमाण उपस्थित कर चुके हैं। अत: अब अधिक पाठों का उल्लेख करने का कोई विशेष अर्थ नहीं रहता। नदी-संतरण को पूर्वाचार्य बहुत अधिक पापकारी एवं अधर्म नहीं मानते थे। यदि मानते होते, तो केवल अन्तर्मुहूर्त्त काल संबंधी सीमित श्वासोच्छवासों के कायोत्सर्ग से उसकी शुद्धि स्वीकार नहीं करते। किसी बहुत बड़े तप आदि प्रायश्चित्त का विधान करते। इस प्रकार के कायोत्सर्ग तो साधारण गोचरचर्या, विहार आदि के साधारण क्रिया के हेतु किए जाते हैं। अत: नदी -संतरण को घोर पाप बताते हुए व्यर्थ का हल्ला मचाना शास्त्र-ज्ञान की अनभिज्ञता का ही द्योतक है। हमारा विनम्र निवेदन है कि मान्यताओं का आग्रह छोड़कर प्रस्तुत समाधान के लिए प्राचीन परम्परा को ही मान्य करना चाहिए।

नदी-संतरण के हेतु जीवन-रक्षा सम्बन्धी ही अधिक है। किन्तु, जीवन-रक्षा किसलिए? संयम एवं धर्म पालन के लिए न? अत: धर्म-प्रचार के हेतु भी उसका प्रयोग किया जाए, तो यह कल्पनीय ही ठहरता है, अकल्पनीय नहीं। धर्म-प्रचार के लिए बृहत्कल्प सूत्र में निर्दिष्ट अंग-मगध, कौशाम्बी, थूणा और कुणाल आदि के मध्य क्षेत्र को ही आर्य-क्षेत्र माना है और वहीं साधु-साध्वी को विहार करने का विधान है, अन्यत्र नहीं। परन्तु, प्राचीनकाल से ही उक्त क्षेत्र के बाहर विहार होते रहे हैं। बृहत्कल्प-सूत्रकार भी कहते हैं कि ज्ञान-दर्शन आदि की वृद्धि होती हो तो उक्त आर्य क्षेत्र से बाहर तथाकथित अनार्य क्षेत्र में विहार हो सकता है। अत: स्पष्ट है कि धर्म सम्पादन एवं धर्म-प्रचार मुख्य है। स्वाध्याय का अन्तिम परिपाक भी धर्म-कथा में ही है। अत: नदी-संतरण की भाँति यदि देश-कालानुसार प्रसंग विशेष में धर्मप्रचारार्थ कार एवं वायुयान आदि शीघ्रगामी यानों का प्रयोग किया जाए, तो इसमें क्या आपत्ति है? कुछ भी तो नहीं। जबकि जीवन-रक्षा के लिए, भिक्षा जैसे साधारण कार्य के लिए भी नदी पार की जा सकती है और प्रायश्चित्त केवल एक अल्प कालिक कायोत्सर्ग ही है, तो फिर धर्म-प्रचार तो विशिष्ट प्रयोजन है। वह अनर्थ नहीं, अर्थ है। और, साधारण अर्थ नहीं, विशिष्ट अर्थ अर्थात् प्रयोजन है। यह जिन-शासन की प्रभावना का मुख्य अंग है। इसे कैसे अपदस्थ किया जा सकता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंगा जैसी महानदियों के संतरण में कितनी महान् हिंसा होती है? उसकी तुलना में उक्त यांत्रिक वाहनों में तो कुछ भी हिंसा नहीं है। बुद्धिमान व्यक्तियों को प्रत्येक कार्य में आय-व्यय एवं लाभ-हानि का सूक्ष्म बुद्धि से गणित लगाना ही चाहिए। अन्ध-हस्ति की तरह केवल साम्प्रदायिक मान्यताओं के पथ पर दौड़ते रहना न प्राचीन-युग में कुछ अर्थ रखता था और न आज के चिन्तन प्रधान वैज्ञानिक युग में कुछ अर्थ रखता है। सत्य के उपासक को मान्यताओं से ऊपर उठकर सत्य की ही एक मात्र उपासना करना सत्य की साधना है। इसीलिए श्रमण भगवान् महावीर ने सत्य को भगवान् कहा है –

"सच्चं खु भगवं"

संदर्भ :-

1. यही प्रसंग बृहत्कल्प भाष्य तथा निशीथ भाष्य में निर्दिष्ट है–

   वीरवरस्स भगवतो, नावारूढस्सकासि उवसग्गं।
   मिच्छादिट्ठि परद्धो, कंबल-सबलेहि तित्थं च।।

   –बृहत्कल्प भाष्य 5628, निशीथ भाष्य 4218

2. सट्ठाणे सट्ठाणे, सेया बलिणो य हुंति खलु एए।
   सट्ठाण – परट्ठाणा, य हुंति वत्थूतो निप्फ ।।323।।

   –शिष्यः पृच्छति –किमुत्सर्गः श्रेयान् बलवाँश्च?... उत्सर्ग-अपवादाश्च स्वस्थाने-स्वस्थाने श्रेयांसो बलिनश्च भवन्ति, परस्थाने-परस्थाने-ऽश्रेयांसो दुर्बलाश्च।

   –बृहत्कल्प भाष्य एवं टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org